भाद्र शुक्ल ७, सोमवार, दिनांक - २९-०८-१९६०
ऋषभजिन स्तोत्र, गाथा - २७ से ३०, प्रवचन-८

यह पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का ग्रन्थ है। 'पद्मनन्दि' एक महान आचार्य दिगम्बर सन्त हो गये हैं। भावलिंगी सन्त। लगभग ९०० वर्ष पहले (हुए हैं)। वनवासी सन्त थे, आत्मज्ञानी ध्यानी आत्मा में छठी-सप्तम भूमिका जिनको प्रगट हुई थी। ऐसे भावलिंगी सन्त (थे)। अध्यात्म की दृष्टि का भी उसमें बहुत कथन है और धर्मी जीव को भगवान की भक्ति, पूजा का भी भाव आता है। है शुभभाव, है शुभभाव; वह धर्म नहीं है तो भी शुभभाव धर्मी को आये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु : शुभ का अर्थ क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ का अर्थ पुण्यबन्ध का कारण, धर्म नहीं। परन्तु वह बात श्रवण में-धर्म का श्रवण करना—ऐसा भी शुभभाव आता है, कथन करना, उपदेश करना —ऐसा भी शुभभाव धर्मी को आता है। शुभभाव आये नहीं तो वीतराग हो जाए। और शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की परिणति होने पर भी जब तक शुद्ध उपयोग अतर में रमे हीं, तब तक ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। भगवान की वाणी श्रवण करना, सुनाना, वांचन करना, पृच्छा करना, उसका उत्तर सुनना, उसका विचार विकल्प द्वारा करना वह सब शुभभाव ही है। मोतीलालजी! शुभभाव ही है।

वह शुभभाव, धर्म भूमिका में कर्मधारारूप राग उसकी भूमिका के योग्य चौथे गुणस्थान में समकिती को अविरत सम्यग्दृष्टि को भी आता है, पंचम गुणस्थान में श्रावक को और छठे गुणस्थान में मुनि को भी भक्ति का राग आता है। वह भी यात्रा, भक्ति, पूजा, दया, दान का भाव आता है, वह शुभराग है। नेमचन्दभाई! पंच महाव्रत का भाव आता है या नहीं? पंच महाव्रत भी शुभराग है, शुभ उपयोग है। धर्म नहीं। वास्तव में धर्म का कारण भी नहीं है। तो भी भूमिका में सर्वज्ञपद अपना निजपद का ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ तो सर्वज्ञ परमात्मा जो हो गये, उनकी भक्ति, पूजा का श्रवण, मनन का, विनय करने का जो भाव है, (वह) सब शुभभाव ही है। ऐसे भगवान की पूजा, भक्ति का भी भाव आता है, उसका नाम शुभभाव है।

उस शुभभाव को मिथ्यात्व माने, वह मूढ़ जीव है, अज्ञानी है। अशुभ भी आता है। सम्यग्दृष्टि को अशुभ नहीं आता? स्त्री का विषय-भोग, राग, धन्धा-पानी करने का भाव अशुभ आये बिना रहता है? पंचम गुणस्थान में, चौथे गुणस्थान में भी अशुभभाव तो आर्तध्यान, रौद्रध्यान है, आता है और रौद्रध्यान, आर्तध्यान जब हो, तब उससे बचने को ऐसा शुभभाव दया का, दान का, पूजा का, भक्ति का, व्रत का, तप का वह सब शुभभाव है, आते हैं। आचार्य महाराज वर्णन करते हैं। कोई अकेला निश्चयाभासी हो जाए कि नहीं, आत्मा में शुभभाव आते हैं तो वह अधर्म है और उसको मिथ्यात्व मानना, वह बात सच्ची नहीं है। समझ में आया? कठिन बात। हजारीमलजी! शुद्धभाव का भान नहीं अथवा शुभभाव में धर्म मान लेते हैं, अथवा शुभभाव में मिथ्यात्व मान लेते हैं, दोनों बात झूठी है। कैसे उसका मिलान करना? ...चन्दजी! लोग कहते हैं, व्यवहार का लोप हो जाता है। सुन तो सही। व्यवहार तो, महान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ... महान, सर्वज्ञ परमात्मा हुए उससे पहले तीर्थंकरदेव छद्मस्थ (दशा में थे), तब छठी-सातवीं भूमिका में विचरते हैं तो उनको भी शुभ उपयोग तो आता ही है, होता ही है। वह मिथ्यात्व नहीं है, अज्ञान नहीं है। वह अधर्म है। अधर्म अर्थात् आत्मा का स्वभाव शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, रमणता से विरुद्ध है तो उसको अधर्म भी कहते हैं। परन्तु अशुभभाव अधर्म है, उसकी तुलना में शुभभाव के अधर्म में मन्द कषाय है। उसको ज्ञानी जानते हैं कि पुण्यबन्ध का कारण है। उसके फल में श्रवण, मन का, वीतराग की वाणी आदि मिलना होता है। उसमें आत्मा की शान्ति उसके कारण से नहीं होती, धर्म उसके कारण से नहीं है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। या तो अकेले निश्चय में चला जाए, या अकेले व्यवहार से धर्म मानकर प्रसन्न हो जाए कि हमने कर लिया धर्म।

आचार्य कहते हैं, देखा! २६ गाथा हो गयी। जंगल में विचरनेवाले छठे-सातवें गुणस्थान में विराजमान मुनि भावलिंगी, अप्रमत्तदशा आत्मा का आनन्द, शुद्धोपयोग (वर्तता है)। क्षण में शुद्ध उपयोग आता है और क्षण में छठी भूमिका का शुभराग आता है। प्रभु की भक्ति करते हैं। २६ गाथा में चँवर तक आया है। भगवान के अष्ट प्रातिहार्य का वर्णन करते हैं। एक तो अस्तित्व का वर्णन करते हैं कि भगवान हैं, उनको अष्ट प्रातिहार्य थे। समवसरण था, धर्मसभा थी। देव, समकिती भी भक्ति करने को आते हैं।

इन्द्र एकावतारी-एक भवतारी, ऐसे इन्द्र भी भगवान की भक्ति करते थे। उसमें चँवर तक आ गया। छत्र, चँवर, सिंहासन, अब पुष्पवृष्टि अष्ट प्रातिहार्य में है न। देव पुष्पवृष्टि करते हैं न। देव आकर भगवान के समवसरण में पुष्पवृष्टि की भक्ति करते हैं। उसके बहाने यह पुष्पवृष्टि क्या है, उसका थोड़ा अलंकार लगाकर आचार्य महाराज भक्ति करते हैं। २७वीं गाथा।

गाथा २७

विहलीकयपंचसरो पंचसरो जिण तुमम्मि काऊण।
अमरकयपुप्फविट्ठिछल इव बहु मुअइ कुसुमसरो।।२७।।

अर्थ - हे भगवन्! हे जिनेन्द्र! आपके सामने जिस कामदेव के पाँचों बाण विफल हो गये हैं, ऐसा वह कामदेव, देवों के द्वारा आपके ऊपर की हुई जो पुष्पों की वर्षा के बहाने पुष्पों के बाणों का त्याग कर रहा है - ऐसा मालूम होता है।

भावार्थ - आपके अतिरिक्त जितने देव हैं, उनको कामदेव ने बाण मार-मार कर वश में कर लिया; किन्तु हे प्रभो! जब वही कामदेव अपने बाणों से आपको भी वश करने आया, तब आपके सामने तो उसके बाण कुछ कर ही नहीं सकते थे, इसलिए उस कामदेव के समस्त बाण आपके सामने विकल हो गये; इससे ऐसा मालूम होता है कि जिस समय देवों ने आपके ऊपर फूलों की वर्षा की, उस समय वह फूलों की वर्षा नहीं थी, किन्तु अपने बाणों को योग्य न समझकर कामदेव अपने फूलों के बाणों को फेंक रहा था, क्योंकि संसार में यह बात देखने में भी आती है कि समय के बाद जो चीज काम नहीं देती है, उसको मनुष्य फिर छोड़ ही देता है।

गाथा - २७ पर प्रवचन

विहलीकय पचसरे पंचसरो जिण! तुमम्मि काऊण।
अमरकयपुष्फविट्ठी, छला इव बहु मुअइ कुसुमसरो।।२७।।

हे भगवान जिनेन्द्रदेव! आपके सामने जिस कामदेव के पाँचों बाण निष्फल हो गये हैं... बाण निष्फल हो गये। क्या कहते हैं? ये पाँच इन्द्रियों के विषय हैं न? विषय। उसे कामदेव की उपमा देते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय, उसका जो राग है। हे भगवान! इन पाँच इन्द्रियों के कामबाण ने आपको विषय के बाण मारे, परन्तु आपके आगे निष्फल हो गये। आप वीतराग अरागी अन्तर आनन्द की दशा में परिणमित होकर उस कामबाण को निष्फल कर दिया। कामबाण का असर आपको हुआ नहीं। बड़े-बड़े कितने ही देव धारण करनेवाले काम, स्त्री का विषय अथवा प्रशंसा आदि के शब्द, राग में घुस जाते हैं।

प्रभु! देवों ने आप पर जो पुष्पवृष्टि की वह क्या है? हम क्या मानते हैं? कि पाँचों बाण निष्फल हो गये। **ऐसा वह कामदेव, देवों द्वारा आपके ऊपर की हुई जो पुष्पों की वर्षा,...** पुष्पवृष्टि के बहाने **मानो अपने पुष्पबाणों का त्याग कर रहा है, ऐसा मालूम होता है।** आहाहा! उसमें भी भक्ति उनको भासित होती है। देखो! इन्द्र एकावतारी हो। शकेन्द्र और उसकी शचिरानी, दोनों एक भवतारी होते हैं। वहाँ से निकलकर, एक भव धारण कर, केवलज्ञान पाकर दोनों मोक्ष जानेवाले हैं। अनादि जितने शकेन्द्र और उसकी शचि रानी होती है (एकावतारी ही होते हैं)। शचि उत्पन्न होने के काल में तो मिथ्यात्वसहित उत्पन्न होती है। स्त्री है न। परन्तु बाद में आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। वह रानी और उसका पति इन्द्र, दोनों अन्तिम मनुष्य देह धारण करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। वह इन्द्र आकर पुष्पवृष्टि करता है और देव आकर भगवान के समवसरण में (पुष्पवृष्टि करते हैं)। तो कहते हैं, प्रभु! वह पुष्पवृष्टि नहीं है। तो क्या है? कामबाण निष्फल गया, कामदेव निष्फल गया तो कामदेव ने पुष्पों की आपके ऊपर वर्षा की। अहो... धन्य है, धन्य है, महाराज! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा आपकी वीतरागदशा, उसमें हमारा कामबाण आपके पास निष्फल गया।

भावार्थ - आपके अतिरिक्त जितने देव हैं, उनको कामदेव ने मार-मारकर वश में कर लिया है। किसी को प्रशंसा ने, किसी को स्त्री के कटाक्ष ने, किसी को स्त्री के विषय से, किसी को जगत के मान से सब घात हुए, छेदित हुए सभी देवों को घाव लगे हैं। आपके अतिरिक्त कोई देव सच्चे देव रहे नहीं। कामबाण ने उसको घाव मारा

है, घायल कर दिया है, घायल कर दिया है। कामबाण ने उसको मार-मारकर घायल कर दिया। राग में एकाकार कर दिया।

किन्तु हे प्रभो! जब वही कामदेव, अपने बाणों से आपको वश करने आया, तब आपके सामने उसके बाण, कुछ कर ही नहीं सके। कुछ कर ही नहीं सके। वीतराग... वीतराग। आपके आनन्दस्वरूप में लीन हो गये, प्रभु! आपको कामबाण का विकल्प कहाँ से हो? आपके निर्विकल्प आनन्द में आप झूलते थे, उसके फलस्वरूप आपको केवलज्ञान हो गया। आपके सामने वह कुछ कर नहीं सका। **इसलिए उस कामदेव के समस्त बाण, आपके सामने विफल हो गये।** फल बिना के हुए। उसका कुछ फल-राग उत्पन्न नहीं कर सका। **जिससे मालूम होता है कि जब देवों ने आपके ऊपर फूलों की वर्षा की...** यह बात सत्य होगी या नहीं? समवसरण धर्मसभा होती है, वहाँ अभी भगवान के पास धर्मसभा है। श्री सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। वहाँ भी अष्ट प्रातिहार्य सदा होते हैं। देव पुष्पवृष्टि करते हैं। यह क्या? नेमचन्दभाई! पुष्पवृष्टि कर सके नहीं, जड़ की क्रिया कर सके नहीं, परद्रव्य का परिणमन अपने अधिकार की बात नहीं है। कौन कहता है अधिकार की बात? परन्तु आत्मज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि को ऐसा शुभभाव आता है, तब ऐसी वृष्टि की क्रिया का उसका काल होता है, उसके कारण से होता है। उसमें शुभभाव को निमित्त कहने में आता है। कर्ता नहीं। सम्यग्दृष्टि उस शुभभाव का कर्ता ही नहीं है। यह बड़ी कठिन बात। कहाँ गये? धन्नालालजी! शुभभाव का कर्ता नहीं है, तो करता क्यों है? अरे! सुन तो सही। प्रभु! तुझे चैतन्यतत्त्व की लीला (खबर नहीं)।

स्वभाव का सागर भगवान, उसकी दृष्टि हुई तो स्वभाव जिसको प्रगट हुआ तो उसके ऊपर पुष्पवृष्टि करते हैं। वह क्रिया तो उस समय पुष्प की होनेवाली परमाणु के क्रमबद्ध में आती है। उसमें सम्यग्दृष्टि का शुभभाव निमित्त पड़ता है। निमित्त पड़ता है उसका अर्थ? वह निमित्त हुआ तो वहाँ (कार्य) हुआ, ऐसा नहीं। होनेवाला था। यह बात जगत को नहीं बैठती। होनेवाली थी तो इन्द्र, देव घर पर बैठे रहे तो वहाँ क्यों नहीं हुई? सुन तो सही, प्रभु! तुझे चैतन्य की लीला (खबर नहीं है)। उसका शुभभाव होता है, तब ऐसी क्रिया जो होनेवाली है, उसके काल में हुए बिना रहती नहीं। उसके शुभभाव से नहीं। शुभभाव से क्रिया नहीं हुई, शुभभाव से धर्म नहीं हुआ। ...चन्दजी!

कठिन बात, भाई! शुभभाव आया, उससे अपने चैतन्य में शान्ति नहीं (होती) और शुभभाव से उस पुष्प की क्रिया नहीं होती। अरे! ये (बात)। समझ में आया? लेकिन वह आये बिना रहता नहीं और वह क्रिया होती है तो उसके कारण से (होती है)। शुभभाव के कारण से नहीं परन्तु होनेवाली क्रिया से होती है। मोतीलालजी!

लोगों को तत्त्व का (ज्ञान नहीं)। नौ तत्त्व की भिन्न-भिन्न पृथक् क्रिया है, वह कया है और कैसी होती है, खबर नहीं और परस्पर पकड़ लेते हैं, ... पकड़कर चले जाते हैं। शुभभाव, शुभभाव धर्म है, चलो, भैया! करते-करते धर्म हो जाएगा। इन्द्र भी करते हैं। क्या इन्द्र अधर्म जानकर करते हैं? तो उसको भी धर्म है? नहीं। धर्म नहीं। धर्म तो रागरहित अखण्ड चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा की क्रिया का परिणमन होना, वही धर्म है। परन्तु धर्म की पूरी परिणति जब तक नहीं होती तो इन्द्र ऐसे पुष्पवृष्टि करते हैं। कोई कहता है, उसमें हिंसा होती है। कोई ऐसा करता है। गड़बड़ी का पार नहीं होता? विमान में बैठकर आये उसमें पुष्प की हिंसा होती है। सुन तो सही। धर्मी के शुभभाव की कीमत तुझे खबर नहीं। शुभभाव राग की मन्दता है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें सातिशय पुण्य बँधता है। मिथ्यादृष्टि को ऐसा शुभ उपयोग आता है, उसमें निरअतिशय पुण्य है। उस पुण्य के फल में वाणी, तीर्थंकर का योग ऐसा निमित्त मिलता है। परन्तु उस निमित्त से लाभ नहीं है, ऐसा प्रथम से मानते हैं। ऐसी बात है भाई! समझ में आया?

कहते हैं, उस समय **वह फूलों की वर्षा नहीं थी,...** वह फूलों की वर्षा नहीं थी। क्या कहते हैं? भगवान! वह फूल की वर्षा नहीं है। हम तो देखते हैं कि कामबाण आप पर डाला, वह निष्फल गया, ऐसी पुष्पवृष्टि करते हैं। ऐसा हम तो पुष्पवृष्टि में देखते हैं। ओहो! **वह कामदेव स्वयं अपने पुष्पबाणों को फेंक रहा था। क्योंकि संसार में यह बात देखने में आती है कि कुछ समय के बाद जब जो चीज काम में नहीं आती...** समय पर जो चीज़ काम में नहीं आती **उसको मनुष्य छोड़ देते हैं,...** छोड़ो। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा,... सब देव कोई स्त्री द्वारा हने गये, कटाक्ष के द्वारा हने गये, विषय से हने गये, भोग से हने गये। वीतराग कामदेव को जीतनेवाले अरागी आत्मा की जिसकी परिणति है, उस पर तो पुष्पवृष्टि ही करनी चाहिए। उसके बाण निष्फल गये तो पुष्पवृष्टि की। वह लिया। २८।

गाथा २८

एस जिणो परमप्पा णाणोण्णाणं सुणेह मा वयणं।
तुह दुंदुही रसंतो कहइ व तिजयस्स मिलियस्स।।२८।।

अर्थ - हे भगवन्! बजती हुई आपकी दुन्दुभि (नगाड़ा) तीनों लोक को इकट्ठा कर यह बात कहती है कि हे जीवों! यदि वास्तविक परमात्मा हैं तो भगवान आदिनाथ ही हैं, किन्तु इनसे भिन्न परमात्मा कोई भी नहीं; इसलिए तुम इनसे अतिरिक्त दूसरे का उपदेश मत सुनो, इन्हीं भगवान के उपदेश को सुनो।

भावार्थ - मङ्गल काल में जिस समय आपकी दुन्दुभि, आकाश में शब्द करती है, अर्थात् बजती है; उस समय उसके बजने का शब्द निष्फल नहीं है, किन्तु वह इस बात को पुकार-पुकार कर कहती है कि हे भव्य जीवों! यदि तुम परमात्मा का उपदेश सुनना चाहते हो तो भगवान श्री आदिनाथ का दिया हुआ उपदेश सुनो, किन्तु इनसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देव हैं, उनके उपदेश को अंशमात्र भी मत सुनो, क्योंकि यदि परमात्मा हैं तो श्री आदीश्वर भगवान ही हैं, किन्तु इनसे भिन्न लोक में दूसरा परमात्मा नहीं है।

गाथा - २८ पर प्रवचन

एस जिणो परमप्पा, णाणोण्णाणं सुणह मा वयणं।
तुह दुंदुही रसंतो, कहइ व तिजयस्स मिलियस्स।।२८।।

दुन्दुभी। भगवान समवसरण में विराजते हैं। वे तो वीतराग है। दुन्दुभी नगाड़ा। मंगल बाजे बजते हैं न सुबह। ऐसे मंगल बाजे-दुन्दुभी। ऐसे तो साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। भगवान के समवसरण में। ये क्या ? एक ओर निर्विकल्प वीतरागता। जिसमें गुण-गुणी के भेद का विकल्प करे तो वह भी पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। ऐसी दृष्टि अन्तर में करके वीतराग हुआ तो कहते हैं कि वहाँ दुन्दुभी बजती है। समवसरण में बड़ा नगाड़ा, दैवी नगाड़ा (बजता है)। यहाँ भी पुत्र की शादी होती है, तब ऐसा कुछ

करते हैं न? पुत्र का विवाह होता है, तब करते हैं। नगाड़ा बजाते हैं। वहाँ लड़का था न? हम अजमेर में थे तब। लालचन्दजी के घर पर कुछ था। नगाड़ा बजता था। क्या है? पुत्र के यहाँ पुत्रजन्म हुआ है। साधारण मनुष्य होने पर भी सुबह नगाड़ा बजाते हैं। हम वहाँ थे। अच्छा मुहूर्त होता है। यह तो साधारण पुण्यवन्त।

(यहाँ तो) तीर्थंकर सर्वज्ञदेव, उसमें तीर्थंकर आदिश्वर भगवान का प्रश्न है। ऐसा पुण्य, उसकी बराबर प्रतीत करनी चाहिए। उसके फल में देव दुन्दुभी-नगाड़ा बजाते हैं। देव। यहाँ पैसे देकर बजानेवाले को अच्छे मुहूर्त पर बुलाना पड़े। वहाँ देव आकर नगाड़ा बजाते हैं। क्या कहते हैं? **हे भगवन्! आपकी बजती हुई...** बजती हुई। आपका **दुन्दुभी (नगाडा) तीन लोक में...** तीन लोक को इकट्ठा करके **यह बात कहती है...** तीन लोक वहाँ इकट्ठा हो गया? उसके अभिप्राय में ऐसा है कि यह दुन्दुभी तीन लोक का जिसे ज्ञान है, (उनको सुनने हेतु) तीन लोक के जीव आ जाओ। भगवान की वाणी सुनो। भगवान के सिवा कोई दूसरे की वाणी सुननी नहीं। रागी, द्वेषी, अज्ञानी कामबाण से घायल हो गये हो, उसका वचन नहीं सुनना। वीतराग सर्वज्ञ कामबाण से रहित हो गये, उनकी वाणी सुनो। उस वाणी में अमृत भरा है। अमृतकुण्ड में से निमित्त होकर वाणी अमृतकुण्डरूप प्रवाह में बहती है। तीन लोक को इकट्ठा होकर दुन्दुभी कहती है। क्या सब इकट्ठे हो गये? हम कहते हैं न। हम इकट्ठे होकर आते हैं। भगवान की दुन्दुभी (बजती है) तो हम कहते हैं कि सब लोक इकट्ठे होकर (आओ)। (दुन्दुभी) **यह बात कहती है कि हे जीवो! वास्तविक परमात्मा तो भगवान आदिनाथ ही हैं,...** जिसने अनेकान्त स्वरूप प्रगट किया है। यहाँ तो (पहले से बात) लेकर आते हैं न। सर्वार्थसिद्धि से लेते-लेते अष्ट प्रातिहार्य तक आये हैं।

भगवान आदिनाथ ही हैं; इनसे भिन्न कोई परमात्मा नहीं है,... दूसरा कोई कर्ता परमात्मा जगत का, ईश्वर और ऐसा-वैसा सब झूठ है। परमात्मा हो तो साक्षी सर्वज्ञदेव की सेवा करो। उनकी वाणी सुनो। वाणी सुनना तो शुभभाव है। नेमचन्दभाई! ऐसा क्यों कहता है दुन्दुभी नाद? अरे! भगवान! सुनने का राग धर्मी को आये बिना रहता नहीं। शुभराग है। गणधर को आता है। सन्तों एकावतारी को (आता है)। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेने की तैयारी हो, उसके पहले भी भगवान की वाणी सुनने

का राग होता है। बाद में अन्दर लीन हो जाए तो केवलज्ञान होकर स्थिर हो जाए। परन्तु वाणी सुनने का प्रेम (होता है)। संसार में विकथा नहीं सुनता? धन्धा ऐसा करना, ऐसी मशीन लगाना, ऐसा करना, ऐसा हो तो तुमको बहुत लाभ होगा। पच्चीस हजार की आमदनी एक महीने की होगी। वहाँ सुनता है या नहीं पाप का भाव? केवलचन्दभाई! वहाँ सब बात सुनता है। यह मशीन ऐसा होगा, इससे ऐसा होगा, ऐसा करोगे तो इसमें से इतनी महीने की कमाई बढ़ेगी। महीने की पाँच हजार की है, दस हजार और बीस हजार की हो जाएगी। ... धीरुभाई! जगत को...

कहते हैं, भगवान! वाणी नहीं, वह नगाड़ा ऐसा कहता है कि **इनसे भिन्न कोई परमात्मा नहीं है। इसलिए तुम दूसरे का उपदेश मत सुनो,...** एक वीतराग दृष्टि और वीतराग रमणता हुई, उसकी वाणी में वीतरागता ही निकलती है। अकेला वीतराग। निमित्त, राग की उपेक्षा कराते हैं और स्वभाव की अभेद दृष्टि कराते हैं। ऐसी दृष्टि करवाता है ऐसा उपदेश है, वही सुनने लायक है। समझ में आया? सुनते समय तो शुभराग है। है, शुभराग तो ... आये बिना रहता है? परन्तु शुभ उपयोग में सुना क्या? वीतरागी उपदेश। वीतरागी उपदेश का अर्थ? अहो! तेरा स्वरूप परमात्मा आनन्दकन्द से भरा है। उसमें भेद भी न कर। अभेद दृष्टि कर और अभेद में लीनता कर। ऐसा भगवान का उपदेश है, दूसरे का ऐसा उपदेश होता नहीं। अज्ञानी गड़बड़ी करते हैं, घायल हो गये हैं तो उसका उपदेश सुनने लायक नहीं है। **इसलिए तुम दूसरे का उपदेश मत सुनो,...** अस्ति-नास्ति की। दूसरे का अर्थात् मिथ्यादृष्टि वस्तु का स्वरूप नहीं जानते हैं, ऐसा कोई साधु नाम धारण करता हो या देव नाम धारण करता हो, उसका उपदेश सुनने लायक नहीं है। ये देव की परीक्षा करते हैं कि देव ऐसे होते हैं। और देव की वाणी में भी ऐसी वाणी है। देखो न! वर्तमान में तो इतनी गड़बड़ी हो गयी है। अभी सर्वज्ञ की वाणी क्या कहती है और क्या समझते हैं, उसका लक्ष्य और रुचि की भी खबर नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो! भगवान ने ऐसा कहा। क्या कहा? भगवान ने कहा है कि निमित्त से हुआ, निमित्त को प्राप्त कर हुआ, व्यवहार को प्राप्त कर हुआ। वह सब कथन तो व्यवहारनय के हैं। तेरा स्वभाव पाकर तेरी दशा होती है—ऐसा भगवान का उपदेश है, उसको सुनो, दूसरे का नहीं।

भावार्थ – मंगल काल में जिस समय आपकी दुन्दुभी आकाश में शब्द करती है... मंगल काल में। औरतें नहीं गाती शादी के प्रसंग में? आज तो वेणलुं वायुं... ऐसा कुछ बोलती हैं न? क्या? वेणला वाया। प्रभाती गाते हैं। पाप की प्रभाती। धर्म की प्रभाती बोले वह अलग। ये तो, वेणला वाया ने सोना समो सूर्य उग्यो, थाण भर्यो मोतीअे ने... ऐसी सब बातें करते हैं न? उसको हर्ष है, पाप का। पाप का हर्ष है। यहाँ धर्मी को मंगल बाजा बजता है। चलो, भगवान की वाणी सुनने। त्रिलोकनाथ की वाणी। चार ज्ञान, चौदह पूर्व को धारण करनेवाले, अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान उत्पन्न करने की ताकत, चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना करने की ताकत (रखनेवाले) भगवान की वाणी सुनते हैं। वही सुनने लायक है, दूसरे की वाणी सुनने लायक नहीं है।

दूसरा, जो कोई प्राणी पुण्य, राग, निमित्त से कल्याण होगा—ऐसा बतानेवाला हो तो वह कथा धर्मकथा नहीं है, परन्तु पापकथा है। समझ में आया? धन्नालालजी! वह विकथा (है)। विकथा का नाम ऐसा है, भाई! दर्शनभेदनी। दर्शन का भेद मिथ्यात्व, सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाली, भेद करनेवाली। जो कोई कथन उपदेश में ऐसा आवे कि तुझे शुभराग से धर्म होगा, पुण्य करते-करते कल्याण होगा, हमारे समीप दृष्टि रखो तो तेरा कल्याण होगा और क्रियाकाण्ड में घुस जाओ बराबर, क्रिया करते-करते, करते-करते ऐसा शुभराग हो जाए कि फिर शुभराग फटकर वीतरागता हो जाएगी। ऐसी कोई कथा करता हो तो समकितभेदनी-समकित का नाश करनेवाली है। विकथा है। ऐसी विकथा मत सुनो। धन्नालालजी! देखो! भक्ति करते हैं। आहाहा! वीतरागी सन्त महामुनि भावलिंगी परमेश्वरपद को अन्दर से त्वरा से ग्रहण कर लेते हैं। त्वरा से, वेग से। कहो, समझ में आया?

उस समय उसके बजने का शब्द निष्फल नहीं है, किन्तु वह इस बात को पुकार-पुकार कर कहती है... पुकार-पुकार कर कहती है, देखो! **हे भव्य जीवो! यदि तुम परमात्मा का उपदेश सुनना चाहते हो तो भगवान श्री आदिनाथ का दिया हुआ उपदेश...** भगवान ने जो उपदेश दिया है, वही सुनो, वही सुनने लायक है। **किन्तु इनसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देव हैं, उनके उपदेश को अंश मात्र भी मत सुनो...** सुनने को जाते हैं न। चलो भाई! कुछ मिलेगा। धूल मिलेगी। चलो भाई! वहाँ उपदेश चलता

है। वीतरागी तत्त्व क्या, सर्वज्ञ के तत्त्व की अभेद दृष्टि का विषय क्या और अभेद की दृष्टि में भी जब तक पूर्ण अभेद न हो, तब भेद में राग क्या आता है, उसकी मर्यादा क्या, उसकी खबर नहीं और कथन करते हैं कि चलो, भाई! थोड़ा तो लाभ मिलेगा न। जयचन्दभाई! लाभ मिलेगा मिथ्यात्व का। समझ में आया? विपरीत मान्यता-उल्टी मान्यता का लाभ (मिले), वह धर्मकथा नहीं। **अंश मात्र भी मत सुनो...** क्यों? भाई! सुनने में क्या है? वह तो परज्ञेय है। परन्तु सुनने में तेरी कोई इच्छा तो है या नहीं? सुनेगा तो तुझे लाभ होगा, ऐसी तेरी मान्यता झूठी है। इसलिए अंश मात्र भी सुनना नहीं। यह क्या? वाणी नुकसान करेगी? परन्तु तेरे भाव में उस वाणी में आनन्द आता है, उत्साह आता है कि उसमें कुछ लाभ होगा, वह तेरा भाव ही झूठा है। अंश मात्र सुनना नहीं।

क्योंकि यदि परमात्मा है तो श्री आदिश्वर भगवान ही हैं, इनसे भिन्न लोक में दूसरा कोई परमात्मा नहीं है। वह तो आदिश्वर कहो या सर्व तीर्थंकर एक आदिश्वर में सब आ जाते हैं। २९।

गाथा २९

रविणो संतावयरं ससिणो उण जड्डुयाअरं देव।
संतावजडत्तहरं तुम्हच्चिय पहु पहावलयं।।२९।।

अर्थ - हे जिनेश्वर! हे प्रभो! सूर्य का प्रभा समूह तो मनुष्यों को सन्ताप का करनेवाला है तथा चन्द्रमा का प्रभा समूह, जड़ता का करनेवाला है, किन्तु हे पूज्यवर! आपका प्रभा समूह तो सन्ताप व जड़ता, दोनों को नाश करनेवाला है।

भावार्थ - यद्यपि संसार में बहुत से तेजस्वी पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु हे पूज्यवर! हे प्रभो! आपके सामने कोई भी तेजस्वी पदार्थ उत्तम नहीं है क्योंकि हम यदि सूर्य को उत्तम तेजस्वी पदार्थ कहें, तो हम कह नहीं सकते क्योंकि उसकी प्रभा का समूह मनुष्यों को अत्यन्त सन्ताप का करनेवाला है। यदि चन्द्रमा को हम उत्तम तथा तेजस्वी पदार्थ कहें तो यह भी बात नहीं बन सकती, क्योंकि चन्द्रमा की प्रभा का

समूह जड़ता का करनेवाला है, किन्तु हे जिनवर! आपकी प्रभा का समूह तो सन्ताप और जड़ता दोनों का सर्वथा नाश करनेवाला है, इसलिए आपकी प्रभा का समूह ही उत्तम तथा सुखदायक है।

गाथा - २९ पर प्रवचन

रविणो संतावयरं, ससिणो उण जड्डुयाअरं देव।
संतावजडत्तहरं, तुम्हच्चिय पहु पहावलयं।।२९।।

आहाहा! चन्द्र, सूर्य को भी हल्का बना देते हैं। प्रभु! आपका चैतन्यप्रकाश और आपके सर्वज्ञ में आया जो तत्त्व, उसके आगे इस चन्द्र, सूर्य को हम क्या अधिक कहें? दुनिया कहती है, चन्द्र अधिक है, सूर्य अधिक है।

हे भगवान! हे प्रभु! **सूर्य का प्रभासमूह तो मनुष्यों को सन्ताप करनेवाला है...** सूर्य की प्रभा। ताप लगता है न? आताप, आताप। गर्मी.. गर्मी.. गर्मी। भागो... भागो। ... गर्मी... गर्मी... गर्मी। सुनता हो तो ... हम एक जगह गये थे तो उसका भट्टारक सुनने आया। हाथ में पंखा था। ये कोई तेरा सुनने का लक्षण है? देखा था या नहीं? उसने देखा था, साथ में थे। ठाठ-माठ करके (आये), पंखा भी ऐसा। मयूरपंख। बैठा। मानो भगवान! क्या है? तू भगवान है? विनय की खबर नहीं। सुनने में कितनी विनयता, नम्रता, योग्यता, पात्रता होती है, उसकी भी खबर नहीं। भगवान की वाणी सुनने आया है, वहाँ ऐसे-ऐसे पंखा चलाता है। मानो मैं बड़ा! भट्टारक। ईश्वरचन्दजी! अरेरे! जैनदर्शन में ऐसे ही रोटी खानेवाले निकलते हैं।

भगवान की वाणी कैसी! इन्द्र, सिंह, बाघ भगवान की सभा में (बैठते हैं)। बाघ और सिंह का तो शरीर बहुत गर्म होता है। इतनी गर्मी ... गर्मी होती है, हवा लगने दो, हवा लगने दो। ओहोहो! तेरा सुनने का लक्षण ही सच्चा नहीं है। सुनने का भी लक्षण सच्चा नहीं है। ... कहा न? बन्दर। आता है न? बन्दर है। ऐसी नम्रता।

कहते हैं, भगवान की वाणी सूर्य के साथ मिलान करने में आती है, ऐसा है नहीं। क्योंकि वह सूर्य तो मनुष्यों को सन्ताप करनेवाला सूर्य है। **तथा चन्द्रमा का**

प्रभासमूह, जड़ता करनेवाला है। चन्द्र उगता है, शीतलता (होने से) मनुष्यों को निद्रा आ जाती है। शीतल ठण्डी हवा आती है न? वह जड़ता का कारण है। अथवा चन्द्रमा की शीतलता में मनुष्य जागता हो तो जड़ता की-विषय की वासना रात्रि को उत्पन्न होती है। चन्द्र जड़ता का कारण है। ... सूर्य सन्ताप का कारण है और चन्द्र जड़ता का कारण है। उसमें कोई महत्ता या अधिकता है नहीं। कहो समझे? **जड़ता करनेवाला है।**

किन्तु हे पूज्यवर! हे पूज्यवर! हे पूज्यवर! आप तो पूजनेलायक हो। **आपका प्रभासमूह, सन्ताप व जड़ता, दोनों का ही नाश करनेवाला है।** आपकी वाणी सुने... भगवान को भी प्रभामण्डल होता है न। उसमें नजर पड़े तो सात भव दिखते हैं। और चैतन्यप्रभु सर्वज्ञ उसमें नजर पड़ जाए तो अपने स्वभाव सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन हो जाए। ऐसा प्रभासमूह मिथ्यात्व, सन्ताप का नाश करता है। अचेतन जड़ भाव विकार, उसका नाश कर चैतन्य की जागृति करनेवाला भगवान, आपका ही .... है। आप ही यथार्थ चन्द्र, सूर्य से दूसरी चीज़ की उपमा आपको दे... चन्द्र, सूर्य की आती है? जयचन्दभाई! आता है कहीं? किसमें? लोगस्स किया है या नहीं? चंदेसु णिम्मलयरा आईतेसु अहिंयपयासयरा सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि... पहले तो किया था या नहीं? चंदेसु णिम्मलयरा, णिम्मलयरा, णिम्मलतरा। हे भगवान! आप चन्द्र से निर्मल हो। तो कहते हैं, नहीं। चन्द्र तो जड़ता लानेवाला है। रात्रि में निद्रा लाता है अथवा विषय की वासना (लाता है)। यहाँ तो निमित्त का कथन है न। और सूर्य का आताप गर्मी... गर्मी... गर्मी (देता है)। ऐसे देश हैं कि वहाँ सूर्य (की इतनी गर्मी होती है कि) चमड़ी काली पड़ जाए। क्या कहते हैं? सिद्दी, सिद्दी। अरबस्तान, अफ्रीका। चमड़ी एकदम काली। आताप लगता है।

प्रभु! आपका प्रभासमूह जड़ता का नाश, विषय वासना का नाश, अज्ञान-अचेतन का नाश और चैतन्य की जागृति, और सन्ताप, आकुलता का भी नाश करनेवाला है। निमित्त से कथन है न, भैया? भक्ति में निमित्त आता है न? उपादान, अन्दर शुद्ध उपादान से करे, तब निमित्त का कथन उसमें आता है। ये दो पुस्तक आ गये हैं। जैनतत्त्व मीमांसा।

भावार्थ – यद्यपि संसार में बहुत से तेजस्वी पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु

हे पूज्यवर... प्रभु! कोई भी तेजस्वी पदार्थ... देखो! यह मिलान करते हैं। आपके प्रभासमूह जैसा है, उसका किसी के साथ मिलान होता नहीं। (कोई भी) आप समान **उत्तम पदार्थ नहीं है, क्योंकि यदि हम सूर्य को तेजस्वी पदार्थ कहें तो उसकी प्रभा, मनुष्यों को अत्यन्त सन्ताप देती है, यदि चन्द्रमा को उत्तम व तेजस्वी पदार्थ कहें तो...** यह बात भी बन नहीं सकती। क्योंकि चन्द्रमा का प्रभासमूह जड़ता करने में समर्थ है। निमित्त से (कथन है)।

किन्तु हे जिनवर! आपकी प्रभा का समूह, सन्ताप तथा जड़ता, दोनों का सर्वथा नाश करनेवाला है, इसलिए आपकी प्रभा का समूह ही उत्तम सुखदायक है। 'वचनामृत वीतराग का परम शान्त रस मूल।' बोलते हैं न? ज्योति आया है या नहीं? 'वचनामृत वीतराग का परम शान्त रस मूल, औषध जो भवरोग का...' भव का ही नाश। पंचास्तिकाय में है कि जिनभवा। भगवान! आप कैसे हो? पंचास्तिकाय शुरुआत (में आता है)। भव को जीतनेवाला जितभवा। और आपकी वाणी? चार गति का भाव और उसका फल जो परतन्त्र है, उसका नाश करनेवाली है। भव बतानेवाली, भव का फल (मिले), ऐसा आपकी वाणी में है नहीं। सर्वार्थसिद्धि का भाव जिस भाव से मिले, उसका भाव बतानेवाले नहीं हो। मोतीलालजी!

मुनि को जिस भाव से सर्वार्थसिद्धि मिलता है और तीर्थंकरत्व मिलता है, वह भी भव है न? नहीं, आपकी वाणी तो भवछेदक है। भव और भव का कारण, चार गति का जो कारणभाव है, (उसको) छेदनेवाली वाणी है। नहीं, उस राग का छेद कर। स्वभाव सन्मुख होकर शुद्ध परिणति में रहे, वह तेरी दशा और तेरा धर्म है। बीच में शुभराग आता है, वह परज्ञेय की भाँति ज्ञाता को जानने में आता है। जाननेलायक है। जाननेलायक में प्रयोजनभूत कहने में आया, आदरनेलायक नहीं है। परन्तु आये बिना रहता नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं, ये लोग सोनगढ़ में शुभभाव को मिथ्यात्व कहते हैं। पत्र में आता है, हाँ! जैन गजट में आया था। जैन गजट में नहीं, परन्तु जैनदर्शन में आया था। वहाँ उदयपुर में देखा था न। मक्खनलाल। कहाँ गये? उग्रसेनजी! उग्रसेन के गाँव में। ऐसी चिट्ठी चली थी, हमारे जाने से पहले। देखो, ये कहते हैं कि शुभ उपयोग मिथ्यात्व है। अरे! सुन तो सही। शुभ उपयोग को मिथ्यात्व अज्ञानी कहते हैं।

शुभ उपयोग को मिथ्यात्व कौन कहता है ? देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा करना, वह भी शुभ उपयोग है। शुभ उपयोग मिथ्यात्व है ? है ही नहीं। उसको लाभदायक मानकर, धर्म की पंक्ति में उसको घुसाये कि उससे धर्म होता है, तो वह मान्यता मिथ्यात्व है। वह तो श्रद्धा में विपरीतता हुई। समझ में आया ? बड़ा लेख लिखा है, जैनदर्शन में ऐसा लिखा है। फूलचन्दजी सबका जवाब देने के लिये तैयार थे। एक-एक अक्षर का। अरे ! सुन तो सही, प्रभु ! तू क्या कहता है ? किसको आरोप देता है ?

यहाँ भगवान को कहते हैं, प्रभु ! उत्तम पदार्थ तो आप ही हो। चन्द्र और सूर्य उत्तम नहीं है। कहो, समझ में आता है ? भगवानजीभाई ! इसमें सब गड़बड़ करते हैं। कानजीस्वामी शुभभाव को मिथ्यात्व कहते हैं। कौन कहता है ? तीन काल में शुभभाव को मिथ्यात्व कहनेवाला मिथ्यादृष्टि है। ईश्वरचन्दजी ! और शुभभाव को धर्म कहनेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात, भाई ! पढ़ते नहीं, सुनते नहीं, विचार करते नहीं। पढ़े कहाँ से ? पढ़े तो उसका... समझे ? रहता नहीं। उसका हृदय रहता नहीं—उसकी मान्यता रहती नहीं। ३०।

गाथा ३०

मंदरमहिज्जमाणांबुरासिणिग्घोससण्णिहो तुज्झ।
वाणी सुहा ण अण्णा संसारविसस्सणासयरी।।३०।।

अर्थ - हे भगवन! हे जिनेश्वर! मन्दराचल से मंथन किये गये समुद्र के निर्घोष (बड़ा भारी शब्द) के समान आपकी वाणी शुभ है, किन्तु अन्य वाणी शुभ नहीं तथा आपकी वाणी ही संसाररूपी विष का नाश करनेवाली है, किन्तु अन्य दूसरी वाणी संसाररूपी विष का नाश करनेवाली नहीं है।

भावार्थ - हे भगवन्! यद्यपि संसार में बहुत से बुद्ध प्रभृति देव मौजूद हैं और उनकी वाणी भी मौजूद है, किन्तु हे प्रभो! जैसी आपकी वाणी (दिव्यध्वनि) शुभ तथा उत्तम है, वैसी बुद्ध आदि की वाणी नहीं है क्योंकि आपकी वाणी, अनेकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन करनेवाली है और उनकी वाणी, एकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन

करनेवाली है। वस्तु अनेकान्तात्मक ही है, एकान्तात्मक नहीं। आपकी वाणी समस्त संसाररूपी विष को नाश करनेवाली है, किन्तु बुद्ध आदि की वाणी, संसाररूपी विष को नाश करनेवाली नहीं, बल्कि संसाररूपी विष को उत्कृष्ट करनेवाली ही है। आपकी वाणी मन्दराचल से जिस समय समुद्र का मन्थन हुआ था और जैसा उस समय शब्द हुआ था, उसी शब्द के समान उन्नत तथा गम्भीर है।

गाथा - ३० पर प्रवचन

मंदरमहिज्जमाणांबु रासिणिग्घोससण्णिहा तुज्झ।
वाणी सुहा ण अण्णा, संसारविसस्स णासयरी।।३०।।

ओहो! दिव्यध्वनि। अब दिव्यध्वनि (की बात करते हैं)। प्रातिहार्य हैं न एक के बाद एक? हे **भगवान! हे जिनेश! मन्दराचल से मंथन किये गये समुद्र के निर्दोष (बड़े भारी शब्द)...** मेरुपर्वत को दण्ड बनाकर। मेरुपर्वत एक लाख योजन ऊँचा। (उसका) दण्ड बनाकर समुद्र में मन्थन (करने में आये)। जैसे दही में मथनी होती है न? क्या कहते हैं? रवैया। ऐसा-ऐसा करते हैं या नहीं? तो दही की छाछ हो जाती है। उसी प्रकार समुद्र में मेरुपर्वत ... ऐसा निकला, उसमें—दही में भी आवाज निकलती है न? एक मण दही हो, उसमें गर्म पानी डाले तो ऐसी आवाज होती है अन्दर से... ये तो मेरुपर्वत समुद्र में डालकर (हिलाये तो) ऐसी आवाज (होती है), प्रभु! आपकी ध्वनि ऐसी निकलती है। ओहोहो! मनुष्य की ध्वनि। समझ में आया? **हे भगवान जिनेश! मन्दराचल से मन्थन किये गये समुद्र के निर्घोष (बड़े भारी शब्द) के समान आपकी वाणी ही शुभ है,...** गम्भीर ध्वनि निकलती है। गर्जना होती हो। ओहोहो! सहज, हाँ! जैसे बादल में गर्जना होती है न? कौन करताा है? कौन करे? वह तो सहज ऐसी वाणी हो जाती है।

भगवान की वाणी... ऐ... मास्तर! भगवान की वाणी कैसी है? विस्ता या प्रयोगसा? हँसते हैं। बच्चों! कहाँ गये विद्यार्थी? प्रश्न करते थे। भाई! भगवान की वाणी गर्जना की उपमा दी है, परन्तु गर्जना विस्ता है और ये वाणी प्रयोगसा है। चैतन्य

का उसमें निमित्त है। **उसके समान आपकी वाणी ही शुभ है...** वाणी शुभ है। जड़। भगवान! हम सुनते हैं तो हमको शुभ उपयोग हमारे कारण से हुआ। आपकी वाणी भी शुभ है। वाणी शुभ है, वाणी पूज्य है। आता है या नहीं? वाणी पूज्य है। आहाहा! भगवान! आप तो पूज्य हो, आपकी वाणी (पूज्य है)। वाणी तो जड़ है, अचेतन है। वाणी जिस पत्र में लिखते हैं, वह भी अचेतन जड़ है। उसको पूज्यता से नमन करना, वह भी शुभभाव है, शुभ उपयोग है। तो कहते हैं कि शुभ उपयोग आता तो है। आपकी वाणी को हम शुभ कहते हैं। हमारे शुभ उपयोग में वह निमित्त पड़ती है। शुद्ध का भी निमित्त कहने में आता है।

आपकी वाणी अत्यन्त शुभ है, अत्यन्त शुभ है। जड़। किन्तु अन्य वाणी शुभ नहीं है। **आपकी वाणी ही संसाररूपी विष का नाश करनेवाली है,...** संसार के विष को उतारनेवाली आपकी वाणी है। जैसे मन्त्र (बोलते हैं) तो विष उतर जाता है। सर्प काटा हो। भगवान! निमित्त से कथन है न। उतरे, तब निमित्त में ऐसा आरोप देने में आता है न? संसार का विष अनादि से चढ़ा है, विकल्प, राग, दया, दान, व्रत का शुभराग मेरी चीज़ को लाभ करेगा, ऐसी विषदृष्टि जो हुई है, आपकी वाणी जहाँ सुनते हैं तो संसार का नाश कर देती है। तब (वाणी) सुनी कहते हैं। समझ में आया? संसार में तो यह करना है, ... करना है। कोई भी उदयभाव संसार का (हो), जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, षोडशकारण भावना भाते हैं, आता है न? कहाँ गये श्रीचन्दजी? है या नहीं? क्या बोलते हो? भूल जाते हैं। आप पूरा दिन वहाँ बोलते हो। षोडशकारण भावना भाते-भाते, परमगुरु होय, परमगुरु होय। आता है या नहीं? षोडशकारण तो शुभराग है, वह तो आस्रवतत्त्व है। समझ में आया? तो आस्रवतत्त्व की भावना करने योग्य नहीं है। मोतीलालजी! वह आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो, सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञान (हुआ है), अभेद दृष्टि का भान है, परन्तु अभेद की परिणति पूर्ण नहीं हो, तब तक वह तीर्थंकर गोत्र का भी भाव आता है। परन्तु उसका भी नाश करनेवाली आपकी वाणी है। नाश, भव का भाव और भव, सबके विष को उतारनेवाली वाणी है।

जबकि अन्य वाणी,... दूसरे की वाणी **संसार-विष का नाश नहीं करती।**

भगवान! आपकी ध्वनि... देखो! ध्वनि तक आये। आठ प्रातिहार्य लेने हैं न? आपकी वाणी में ही कोई अचिन्त्य प्रभाव है कि आपकी वाणी सुनते हैं, उनकी दृष्टि में संसार-विष रहता नहीं। क्योंकि आप संसार का नाश करके ही वीतराग हुए हैं। और आपकी वाणी में संसरण इति (संसार), स्वभाव से खिसकर दूर होना, ऐसा उपदेश आपकी वाणी में है ही नहीं। संसार—संसरण इति संसार। उदयभाव को संसार कहते हैं। उस उदयभाव को तो नाश करनेवाली है। उसकी वाणी में ऐसा निमित्तत्व की ताकत है। अपने शुद्ध उपादान से जो अन्तर एकाग्र हो, उसको ऐसी वाणी में निमित्तता है, ऐसा कहने में आता है। नहीं तो अनन्त बार निमित्त वाणी भी सुनी। बराबर है? भगवान की दिव्यध्वनि भी अनन्त बार सुनी। कल्पवृक्ष का फूल, मणिरत्न का दीपक, (उससे) पूजा भी अनन्त बार की। परन्तु उसकी क्रिया का कर्ता और बीच में शुभभाव आया, उससे मुझे धर्म होगा, ऐसी मान्यता का शल्य रहा तो उसको आत्मा का कुछ लाभ हुआ नहीं। कहो, समझ में आया?

विष का नाश करनेवाली दूसरे की वाणी (नहीं है)। भगवान सर्वज्ञ के अतिरिक्त, वीतराग के अतिरिक्त किसी की वाणी विष का नाश करनेवाली नहीं है। श्रीमद् ने कहा है न? 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कही सके नहीं वह भी श्री भगवान जो...' अमृत का समुद्र बहता है। जहाँ अमृत-समुद्र, सागर, शक्ति का सत्त्व जहाँ भरमार उछलती हुई पर्याय में पूर्ण परिणति हुई, वह वाणी द्वारा कितना कहें? वाणी द्वारा कितना आता है? 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो। उस स्वरूप को अन्य वाणी क्या कहे?' प्रभु! पामर प्राणी, जिसे तत्त्व क्या है, उसकी गन्ध-वासना भी नहीं है, वह वस्तु का स्वरूप कहे, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। तेरी वाणी में जो चमत्कार है, ऐसा चमत्कार दूसरे में नहीं। चमत्कार कब कहने में आता है? गणधर दिव्यध्वनि सुनते हैं या नहीं? इन्द्र सुनते हैं या नहीं? बारह सभा है या नहीं? बारह सभा वहाँ क्यों आती है? सुनने को आती या नहीं? उसकी दृष्टि में खबर नहीं है? सम्यग्दृष्टि भी सुनने को आते हैं। उसकी दृष्टि में खबर नहीं है कि मुझे वाणी से लाभ नहीं होगा? और वाणी सुनने में शुभराग है, उससे भी मुझे चारित्र की वृद्धि नहीं होगी। खबर नहीं है? बराबर खबर है। लेकिन सुनने का भाव श्रोता का... चार ज्ञान

और गणधर पद, चार ज्ञान हुए हैं। और अपनी पदवी भी मालूम है, गणधर तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। मालूम है, उत्कृष्ट पदवी है, सब ऋद्धि उसके पास (है)।... ज्ञान आदि सब गणधर को उत्कृष्ट होता है। उस भव में ही मुक्ति होनेवाली है, खबर है, फिर भी शुभराग श्रवण, मनन का विकल्प आता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! जहाँ निर्विकल्प की बात करे वहाँ विष को उड़ा देती है। राग का विष। और कहे कि बीच में राग शुभ उपयोग आता है, उसको शुद्ध में निमित्त का आरोप भी देने में आता है। साधक भी कहने में आता है। व्यवहार से साधन कहो, साधक कहो। ऐसा कथन होता है। अनेकान्त प्रभु का पंथ है। परन्तु अनेकान्त का ऐसा अर्थ नहीं है कि राग से भी कल्याण होगा और कल्याण स्वभाव के आश्रय से भी कल्याण होगा। ऐसा दो प्रकार का कथन अनेकान्त नहीं है। वह तो एकान्त मिथ्यादृष्टि का कथन है। कहो, समझ में आया? ३०वीं गाथा पूरी हुई। भावार्थ (बाकी) है न?

भावार्थ – हे भगवान! यद्यपि संसार में बहुत से बुद्ध... बुद्ध इत्यादि बहुत देव विद्यमान हैं। बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ... जिन्हें वीतरागता समझ में नहीं आयी है, सर्वज्ञ पद नहीं है, उन सबको ले लेना। **किन्तु हे प्रभो! जैसी आपकी वाणी (दिव्यध्वनि) शुभ तथा उत्तम है, वैसी बुद्ध आदि की वाणी नहीं...** दूसरे की नहीं है। **क्योंकि आपकी वाणी अनेकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन करनेवाली है...** इस अनेकान्त में गड़बड़ी चलती है। अनेकान्त क्या? शुभराग से भी धर्म होगा और निश्चय से भी होगा, उसका नाम अनेकान्त। ऐसा अनेकान्त भगवान की वाणी में आया ही नहीं है। ...चन्दजी! समझ में आता है?

अनेकान्त तो वह है कि परपदार्थ परपदार्थ से है और तेरे से नहीं है। तेरा भाव तेरे से है और पर से नहीं है। तेरे शुभभाव भी शुभ से है और शुद्ध से नहीं है। और शुद्धभाव स्वभाव के आश्रय से होता है, शुभभाव से नहीं। उसको भगवान अनेकान्त कहते हैं। उल्टी गड़बड़ करे, उसको अनेकान्त कहते नहीं। खबर भी नहीं। शास्त्र सुने और अन्दर से गड़बड़ी करे। देखो! भगवान की वाणी अनेकान्त है। आया न? अनेकान्तस्वरूप पदार्थ का वर्णन करनेवाली है। एक-एक पदार्थ अपने द्रव्यस्वभावरूप है, गुणस्वभाव से गुणरूप भी है, पर्याय भी है। एक समय की पर्याय त्रिकाल में

नहीं और त्रिकाल पदार्थ एक समय में आता नहीं। ऐसी अनेकान्त वाणी भगवान, आपकी है। दूसरे में है नहीं। सर्वज्ञ एक समय में तीन काल देखते हैं। **वर्णन करनेवाली है...**

जबकि वस्तु अनेकान्तात्मक ही है,... वस्तु कैसी है? अनेक आत्मक, अनेक धर्मस्वरूप। अनेक धर्मस्वरूप का अर्थ? एक पदार्थ में ज्ञान है तो ज्ञान दूसरे गुणरूप नहीं। और एक द्रव्य एक गुणरूप नहीं। एक गुण एक द्रव्यरूप नहीं। एक गुण एक द्रव्यरूप है? एक पर्याय एक गुणरूप है? एक गुण एक पर्यायरूप है? एक गुण एक द्रव्यरूप है? एक द्रव्य गुणरूप है? नहीं। गुण एक पर्यायरूप है? नहीं। ऐसी अनेकान्त वाणी, भगवान! आपकी है, दूसरा वह कह सकता नहीं, दूसरे में है नहीं। देखो! देव की वाणी कैसी है, उसकी पहचान (करवाते हैं)। पण्डित नाम धारण करके बड़े-बड़े शास्त्र पढ़ ले, और पढ़ डाला, कहते हैं न? इतना पढ़कर पढ़ डाला। पढ़कर छोड़ दिया। परन्तु उसका मर्म क्या है, उसका रहस्य क्या है, उसे समझे नहीं तो चैतन्य का पता लगता नहीं।

वस्तु... अनेक अन्त धर्म स्वरूप (है)। आत्मक है न? अनन्त धर्मस्वरूप है। **एकान्तात्मक नहीं। ...एकान्तात्मक नहीं। आपकी वाणी, समस्त संसाररूपी विष को नाश करनेवाली है; किन्तु बुद्ध आदि की वाणी संसाररूपी विष का नाश करनेवाली नहीं, बल्कि संसाररूपी विष को उत्कट करनेवाली (बढ़ानेवाली) ही है।** विष को बढ़ानेवाली है। भगवान को ऐसा नहीं बोलते। लौकिक, अमुक... अरे! भगवान किसको कहते हैं? एक समय को आत्मा कहते हैं, क्षणिक पर्याय को ही आत्मा कहते हैं। वह भगवान कैसा? त्रिकाली को भूल जाते हैं। अकेले त्रिकाली को आत्मा कहकर, पर्याय का अंश उसमें है, उसको नहीं मानते हैं, वह भी आत्मा का नहीं पहचानते, जानते नहीं। एकान्त माननेवाला एकान्त... देखो! भगवान का मार्ग, प्रभु! अनेकान्त है उसका अर्थ, कोई भी द्रव्य, कोई भी गुण, कोई भी पर्याय अपने से है और पर से नहीं है। उसका नाम अनेकान्त है। और स्याद्वाद उसका वाचक है। कहनेवाला। कथंचित् मुख्य-गौण करके कहता है। जब नित्य कहता है, तब अनित्य गौण रह जाता है। अनित्य कहे, तब नित्य गौण रहता है। ऐसी बात स्याद्वाद वाणी में आती है। वाणी

अनेकान्त तत्त्व को बतानेवाली है। तो भगवान की वाणी है, ऐसी वाणी बुद्ध की होती नहीं। बल्कि विष को बढ़ानेवाली है।

आपकी वाणी, समुद्र के मंथन के समय... अन्यमति की बात ली। अन्य में यह बात है न? उसकी बात ली। यह तो दृष्टान्त की बात है। सिद्धान्त उसमें सिद्ध नहीं करना है। उस समय होनेवाला घुघवाट, घुघवाट... घुघवाट समझते हो? आवाज। घु... गरजता है न? ऐसे भगवान आप बैठे थे। ऐसी वाणी निकली, आवाज करती हुई। बारह योजन में लाखों, करोड़ों मनुष्य हों... ऐसी आवाज करती हुई आपकी वाणी है। उसके **समान अत्यन्त उन्नत तथा गम्भीर है।** वाणी कैसी है? उन्नत तथा गम्भीर है। अनन्त-अनन्त भाव को बतानेवाली वाणी, आपके अतिरिक्त दूसरे किसी को होती नहीं। ऐसी भक्ति का भाव है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)